2

उद्‌विकासीय सिद्धान्त (Evolutionary Theory)

सामाजिक परिवर्तन क्यों और कैसे होता है, यह समाजशास्त्र की एक प्रमुख विषय-वस्तु है। प्रारंभ में तो सामाजिक परिवर्तन दार्शनिकों की विषय-वस्तु रही, पर आज दार्शनिकों का स्थान समाजशास्त्रियों ने ले लिया है। वस्तुतः समाजशास्त्र का उद्‌भव भी सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या के लिए ही हुआ। अधिकांश पश्चिमी समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या अपने-अपने ढंग से की है। फलस्वरूप, सामाजिक परिवर्तन के अनेक सिद्धान्त विकसित हुए। समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की प्रकृति के अनुसार इसे हम मुख्यतः चार भागों में बाँटते हैं, वे हैं– उद्‌विकासीय सिद्धान्त (Evolutionary Theory), चक्रीय सिद्धान्त (Cyclical Theory), संघर्ष सिद्धान्त (Conflict Theory) एवं प्रकार्यात्मक सिद्धान्त (Functional Theory)।

जब विश्व के सभी प्रकार के समाजों की ओर गौर किया जाता है तो पता चलता है कि विभिन्न समाज विकास के विभिन्न स्तरों पर हैं। आज यदि विश्व के कुछ समाज शिकार एवं भोजन संचयन (Hunting and Food Gathering) की स्थिति में हैं तो दूसरी तरफ पाश्चात्य देश विकास की चरम सीमा पर हैं। इन दो सीमाओं के बीच कुछ समाज पशुपालन स्तर (Pastoral Stage) में हैं तो कुछ समाज उन्नत कृषि स्तर (Advanced Agricultural Stage) में हैं। इन्हीं तथ्यों से प्रभावित होकर उन्नीसवीं सदी के कुछ समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने यह विचार व्यक्त किया कि समाज में परिवर्तन एक उद्‌विकासीय प्रणाली के तहत होता है। समाज के विकास के विभिन्न स्तर होते हैं, उसे एक-दूसरे से अलग करने के लिए लोगों ने विभेदीकरण (Differentiation) जैसी अवधारणा का प्रयोग किया। उन लोगों का मानना है कि प्रारंभिक स्तर में समाज काफी सरल (Simple) था और उसमें कम-से-कम विभेदीकरण पाया जाता था। पर जैसे-जैसे समाज सरलता से जटिलता की ओर बढ़ा, वैसे-वैसे विभेदीकरण भी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ता गया। सामाजिक विचारकों का यह विचार संभवतः जीव वैज्ञानिकों के विचारों से प्रभावित था। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से होती है कि उद्‌विकासीय स्तर पर

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

अमीबा (Amoeba) एक सबसे सरल प्राणी है और एक विकसित जानवर संरचना की दृष्टि से सबसे अधिक जटिल प्राणी है।

'उद्‌विकास' का शाब्दिक अर्थ किसी वस्तु या जीव का सरल से जटिल अवस्था को प्राप्त करना है। मकीवर एवं पेज (MacIver and Page, 1985) के अनुसार उद्‌विकास परिवर्तन की एक ऐसी अवस्था है, जिसमें परिवर्तनशील वस्तु की अनेक अवस्थाएँ परिलक्षित होती हैं, जिससे उस वस्तु की मौलिकता का पता चलता है। दूसरी ओर, ऑगबर्न एवं निमकॉफ (Ogburn and Nimkoff) का मानना है कि उद्‌विकास एक निश्चित दिशा की ओर परिवर्तन है। संक्षेप में, उद्‌विकास सरलता से जटिलता की ओर परिवर्तन की एक प्रक्रिया है। यह अनवरत रूप से विभिन्न चरणों में धीमी गति से चलनेवाली प्रक्रिया है।

जैविक उद्‌विकास के सिद्धान्त ने कई मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों की चिन्तनधाराओं को काफी प्रभावित किया। डार्विन (Charles Darwin) के प्रभाव में आकर कुछ तत्कालीन सामाजिक विचारकों ने जैविक उद्‌विकास की जगह सामाजिक उद्‌विकास (Social Evolution) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

भिन्न-भिन्न समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने उद्‌विकास के भिन्न-भिन्न कारकों की चर्चा की है। अगस्त कौंत (Auguste Comte) ने विचारों में परिवर्तन को उद्‌विकासीय प्रक्रिया का मूल माना है, तो दूसरी ओर स्पेन्सर ने समाज में निहित आन्तरिक शक्तियों और जनसंख्यात्मक पहलुओं में परिवर्तन को उद्‌विकास का मूल माना है। उधर एल० एच० मॉर्गन (L. H. Morgan) ने प्रौद्योगिक परिवर्तन (Technological Change) को ही उद्‌विकास का मौलिक कारक माना है। इस भिन्नता के बावजूद सामान्यतया उन्नीसवीं सदी के जितने भी उद्‌विकासवादी सिद्धान्त के प्रवर्तक और समर्थक थे, सभी ने निसबेट (Robert A. Nisbet) के अनुसार एक ही किस्म के तथ्यों पर जोर दिया है, वह है– "Change is natural, directional, immanent, continuous and derived from common causes." (Zeitlin, 1981: 335) उस जमाने के जितने भी सामाजिक चिन्तक थे; जैसे– हेगल (Hegel), सैनसीमाँ (Saint Simon), टॉकवील (Tocqueville), स्पेन्सर (Spencer), मॉर्गन (L. H. Morgan) एवं डर्कहाइम (E. Durkheim) सभी ने इसी ढंग का विचार व्यक्त किया है।

उद्‌विकासीय सिद्धान्त को भली-भाँति स्पष्ट करने के लिए हमें दो भागों में विभक्त करते हैं, वे हैं– रेखिक (Linear) एवं बहुरेखिक (Multilinear) सिद्धान्त। रेखिक सिद्धान्त के प्रमुख प्रणेताओं की श्रेणी में अगस्त कौंत, हरबर्ट स्पेन्सर, एल० एच० मॉर्गन, एल० टी० हॉबहाउस (L. T. Hobhouse) आदि आते हैं।

मैक्स वेबर (M. Weber) भी बहुत हद तक उद्‌विकासीय सिद्धान्त में विश्वास रखते थे और उस उद्‌विकासीय सिद्धान्त के अन्तर्गत उनके विचारों को रेखिक परिवर्तन की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस तथ्य की पुष्टि टिमासेफ (Timasheff, 1967: 280) के

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

निम्नलिखित अवलोकन से होती है– "Since the products of civilization are transferable and cumulative, the civilizational process is unilinear and progressive. Moreover, in Weber's view the civilizational process is irreversible and ultimately will lead to a unified civilization."

ऐन्थनी गिडेन्स (Anthony Giddens, 1993) ने बताया है कि 19वीं सदी के सभी उद्विकासीय सिद्धान्त के समर्थक उद्विकास के एकरेखीय सिद्धान्त (Unilinear Principle) में विश्वास रखते थे।

समाजशास्त्री ऑगबर्न ने अपनी रचना में उद्विकास को एक बहुरेखीय प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। कुछ मानवशास्त्रियों ने भी इस तथ्य को स्वीकारा है। उनके अनुसार परिवर्तन सदा एक ही क्रम एवं दिशा में नहीं होता है। जुलियन स्टुवर्ड (Julian H. Steward) बहुरेखिक उद्विकास को एक वास्तविकता (Reality) के साथ-साथ पद्धति (Method) भी मानते हैं। उनका मानना है कि भिन्न-भिन्न समाजों में विकास का क्रम भिन्न-भिन्न रहा है। लेस्ली हवाइट (L. A. White) ने भी संस्कृति के अलग-अलग पक्षों की चर्चा की है। उनके अनुसार संस्कृति के विचारधारात्मक, सामाजिक, प्रौद्योगिकी एवं भावात्मक पक्षों में एक ही रफ्तार और अनुपात में परिवर्तन नहीं होते हैं।

बहुरेखिक सिद्धान्त के प्रणेताओं की श्रेणी में गर्डन चाइल्ड (V. Gordon Childe), लेस्ली हवाइट (L. White), जे० एच० स्टुवर्ड (J. H. Steward), विलियम एफ० ऑगबर्न (William F. Ogburn) आदि हैं। इन लोगों को बहुधा नवउद्विकासवादी (Neo-evolutionists) कहा जाता है। लेन्सकी एवं लेन्सकी (Lenski and Lenski, 1982) का कहना है कि 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में उद्विकासीय सिद्धान्त की प्रमुखता फिर से स्थापित करने की कोशिश की गयी। सभी नए समर्थक उद्विकास के बहुरेखिक सिद्धान्त (Multilinear Principles) के समर्थक हैं। उनका मानना है कि उद्विकास की एक से अधिक दिशाएँ हो सकती हैं। हरेक समाज अपनी-अपनी परिस्थितियों एवं विभिन्न किस्मों के वातावरण में अपने-अपने ढंग से समायोजित करता है और इसी समायोजना की विभिन्नता के कारण प्रत्येक समाज के उद्विकास की अलग-अलग दिशाएँ होती हैं। 19वीं सदी के विकासवादी विचारकों के उद्विकास के सिद्धान्त में प्रगति (Progress) की बात अन्तर्निहित थी। वही आज के उद्विकासीय सिद्धान्तों के समर्थक विकास की जगह समायोजित क्षमता (Adaptive Capacity) की बात करते हैं। आज बहुरेखिक उद्विकास के सिद्धान्त के प्रखर समर्थकों में टैलकॉट पार्सन्स (Talcott Parsons) का नाम सबसे आगे है। यहाँ संक्षेप में हम प्रमुख उद्विकासीय सिद्धान्तों की एक ऐतिहासिक क्रम में चर्चा करेंगे।

अगस्त कौंत (Auguste Comte, 1798-1857)[2]

अगस्त कौंत (Auguste Marie Francois Xavier Comte), समाजशास्त्र के तथाकथित

2 A. Comte का सही उच्चारण कौंत है। 'कुम्ट', 'कौमटे' 'कामते' या 'कॉम' भी कहीं-कहीं हिन्दी पुस्तकों में देखने को मिलता है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

जनक, का समाजशास्त्रीय योगदान उद्‌विकास सिद्धान्त की पुष्टि करता है। उन्होंने बहुत सारे सिद्धान्त दिए हैं, पर हम यहाँ उन्हीं सिद्धान्तों की चर्चा करेंगे जिन सिद्धान्तों से सामाजिक उद्‌विकास का प्रतिपादन एवं पुष्टि होती है (Comte, 1896; 1913)। उदाहरणस्वरूप उनका विचार था कि मानव का बौद्धिक विकास तीन चरणों से गुजरता है। जैसे-जैसे मानव समाज एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करता है, वैसे-वैसे समाज में जटिलता एवं गहनता बढ़ती जाती है। यहाँ हम संक्षेप में तीनों अवस्थाओं की चर्चा कर रहे हैं, जो इस प्रकार हैं– धर्मशास्त्रीय (Theological), तात्विक (Metaphysical) एवं प्रत्यक्षवादी (Positivistic)।

(1) **धर्मशास्त्रीय या काल्पनिक स्तर (Theological or Fictitious Stage)**– मानव के चिन्तन का यह वह स्तर है जिसमें वह प्रत्येक घटना के पीछे अलौकिक शक्ति का हाथ मानता था। कौंत ने इस धार्मिक स्तर के भी तीन उप-स्तरों की चर्चा की है, वे हैं: (क) वस्तु-पूजा (Fetishism)– इस स्तर में इन्सान ने प्रत्येक वस्तु में जीवन की कल्पना की, चाहे वह सजीव हो या निर्जीव। (ख) बहुदेववाद (Polytheism)– इस स्तर में विभिन्न देवी-देवताओं की कल्पना की गयी और उनका सम्बन्ध विभिन्न प्रकार की सम्बद्ध घटनाओं से माना गया। (ग) एकेश्वरवाद (Monotheism)– यह धर्मशास्त्रीय स्तर का अन्तिम चरण है। इस चरण में लोग बहुत देवी-देवताओं में विश्वास न कर एक ही ईश्वर (God) में विश्वास करने लगे।

(2) **तात्विक या अमूर्त स्तर (Metaphysical or Abstract Stage)**– इसे कौंत ने धर्मशास्त्रीय एवं वैज्ञानिक स्तर के बीच की स्थिति माना है। इस अवस्था में मनुष्य की तर्क क्षमता (Reasoning Capacity) बढ़ गयी। इस स्तर में प्रत्येक घटना के पीछे अमूर्त एवं निराकार शक्ति का हाथ माना गया। इस स्तर में सत्ता का आधार दैवी अधिकार के सिद्धान्त होते थे। सामाजिक संगठन के वैधानिक पहलू विकसित होने लगे। राजा की निरंकुश सत्ता की जगह धनिकतंत्र या कुबेरतंत्र (Plutocracy) की व्यवस्था चलने लगी।

(3) **प्रत्यक्षवादी स्तर (Positivistic Stage)**– यह समाज एवं मानव मस्तिष्क के उद्‌विकास का अंतिम चरण है। इस स्तर में हर घटना का विश्लेषण अवलोकन, निरीक्षण एवं प्रयोग वैज्ञानिक तर्कना के आधार पर होने लगता है। समाज में बौद्धिक, भौतिक तथा नैतिक शक्तियों का अच्छा समन्वय देखने को मिलता है। इस स्तर में ही मानवता के धर्म (Religion of Humanity) एवं प्रजातंत्र का विकास होता है। वर्तमान मानव समाज इसी स्तर में है।

संक्षेप में, अगस्त कौंत ने उपर्युक्त तीन स्तरों के सिद्धान्त (Law of Three Stages) को सामाजिक जीवन पर लागू कर समाज के उद्‌विकास की प्रक्रिया को सहज ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः तीन स्तरों का नियम सामाजिक परिवर्तन की आरंभिक व्याख्या है, जिसमें विचार (Idea) को एक मुख्य कारक माना गया है।

कौंत का विज्ञानों का सोपानक्रम (Hierarchy of Sciences)– गणित

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

(Mathematics), खगोलशास्त्र (Astronomy), भौतिकशास्त्र (Physics), रसायनशास्त्र (Chemistry), प्राणिशास्त्र (Biology) एवं समाजशास्त्र (Sociology) का सिद्धान्त भी एक उद्‌विकासीय सिद्धान्त है। उनका मानना है कि वैज्ञानिक चिन्तन का उद्‌विकास हुआ है। उसके अनुसार समाजशास्त्र की उत्पत्ति सबसे बाद में हुई है, इसीलिए यह सबसे अधिक जटिल विषय है। चूँकि गणित (Mathematics) सबसे बुनियादी और सरल विषय है, इसलिए इसकी उत्पत्ति सबसे पहले हुई है। कौंत का कहना है कि हर पूर्ववर्ती विज्ञान बाद में आनेवाले विषय से ज्यादा सरल है। दूसरे शब्दों में, उनका यह विचार घटती हुई सामान्यता और बढ़ती हुई जटिलता (Decreasing generality and increasing complexity) पर आधारित है। जो विषय-वस्तु दूसरी विषय-वस्तु पर जितनी ही निर्भर करेगी वह उतनी ही जटिल होगी।

एल० एच० मॉर्गन (L. H. Morgan, 1818-1881)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

संदिग्ध दिखती है।

कार्ल मार्क्स (Karl Marx, 1818-1883)

जर्मन दार्शनिक कार्ल मार्क्स ने भी सामाजिक परिवर्तन की उद्विकासीय व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने समाज के विकास को विभिन्न चरणों में दिखाया है। उनके अनुसार समाज का एक स्तर से दूसरे स्तर में जाने की प्रक्रिया के पीछे वर्ग संघर्ष (Class Struggle) का मुख्य योगदान होता है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

कार्ल मार्क्स अपने समय के प्रचलित विचारों से काफी प्रभावित थे। उसी प्रभाव का प्रतिफल है कि उनकी रचनाओं में उद्विकासीय सिद्धान्त के तत्व मौजूद हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक German Ideology (Marx and Engles, 1960) में स्वामित्व (Ownership) के विकास के सम्बन्ध में चार सोपानों की चर्चा की है जनजातीय (Tribal), प्राचीन (Ancient), सामन्ती (Feudal), एवं पूँजीवादी (Capitalist)। आगे चलकर उन्होंने अपनी पुस्तक Critique of Political Economy एवं Pre-Capitalist Economic Formation में उत्पादन के तरीकों (Modes of Production) के चार स्तरों की चर्चा की, वे इस प्रकार हैं- एशियाई (Asiatic), प्राचीन (Ancient), सामंती (Feudal) एवं पूँजीवादी (Capitalist) (Bottomore and Rubel, 1963; Marx, 1973)। इन दो प्रकार के चरणों में फर्क कोई विशेष नहीं है, इसके सिवा कि प्रारंभिक 'जनजातीय' (Tribal) स्तर को बाद में उन्होंने एशियाटिक कहना ज्यादा उचित समझा। उनके इस संशोधन के पीछे कुछ विद्वानों द्वारा सिद्धांत की आलोचना थी।

मार्क्स के दोस्त ऐंगल्स (Engels) ने उनकी अन्त्येष्टि सम्मान के अवसर पर कहा था कि– "As Darwin discovered the law of evolution in organic nature, so Marx discovered the law of evolution in human history." (Zeitlin, 1981: 359)। इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग मार्क्स को नजदीक से जानते थे उनका भी मानना था कि मार्क्स एक उद्विकासवादी विचारधारा के चिन्तक थे। यहाँ पर हम संक्षेप में उनके द्वारा दिए गए उद्विकास के विभिन्न स्तरों की चर्चा करेंगे।

आदिम साम्यवादी समाज (Primitive Communism) मानव समाज के इतिहास का प्रथम चरण था। इस अवस्था में उत्पादन के साधनों पर समुदाय का पूर्ण नियंत्रण होता था। व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा (Concept of Private Property) का अभाव था, इसलिए इस समाज में न तो किसी तरह का शोषण था और न ही वर्ग व्यवस्था। यह एक वर्गविहीन (Classless) समाज था। इसके बाद धीरे-धीरे समाज एशियाटिक उत्पादन के साधनों के स्तर की ओर अग्रसर हुआ।

दास-मूलक समाज (Slave Society) में मार्क्स के अनुसार प्रथम बार मानव समाज के इतिहास में दास और मालिक जैसे दो वर्गों का उदय हुआ। विकास के इस स्तर में सामूहिक स्वामित्व (Collective Ownership) की जगह व्यक्तिगत स्वामित्व (Private Ownership) का विकास हुआ। इसी युग से आर्थिक विकास तीव्र हुआ। व्यापार, नगरों का निर्माण, धातुओं का प्रयोग आदि इस स्तर से ही संभव हुआ।

सामन्ती समाज (Feudal Society) का आगमन दास एवं मालिक के बीच परस्पर संघर्ष के परिणामस्वरूप हुआ। इस समाज में भी दो वर्ग थे, वे थे– सामन्त (Feudal Lords) और कृषिदास (Serfs)। सामन्त उत्पादन के साधनों के स्वामी थे। कृषिदास सामन्तों के अधीन कार्यों में हाथ बँटाते थे तथा युद्ध की स्थिति में सामन्त के सिपाही के रूप में लड़ते थे। इस समाज में निजी सम्पत्ति की धारणा और ज्यादा मजबूत हुई। सामन्तों एवं कृषिदासों के बीच संघर्ष निरन्तर चलते रहते थे।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

पूँजीवाद समाज (Capitalist Society) सामन्तों एवं कृषिदासों के बीच पारस्परिक संघर्ष के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया। इस समाज में भी मुख्य दो वर्ग हैं– पूँजीपति (Capitalist) और श्रमिक या सर्वहारा (Proletariat)। इस समाज में उत्पादन के साधनों पर मुख्य अधिकार पूँजीपतियों का होता है, जबकि उत्पादन कार्य में मेहनत श्रमिकों की होती है। पूँजीपति सदा श्रमिकों का शोषण करते हैं। इससे दोनों वर्गों के बीच वर्ग संघर्ष (Class Struggle) की प्रक्रिया चलती रहती है।

मार्क्स ने साम्यवादी समाज (Communism) को उद्विकास का अन्तिम चरण माना है। उनके अनुसार इस समाज में वर्ग संघर्ष (Class Struggle) की प्रक्रिया का अंत संभव है, क्योंकि विकास के इस चरण में वर्ग विभाजन के साथ-साथ राज्य की भी समाप्ति हो जायेगी (Withering away of state)। लेकिन अबतक, के ऐतिहासिक अनुभवों से लगता है कि निकट भविष्य में ऐसा समाज संभव नहीं है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि मार्क्स को एक उद्विकासीय चिन्तक नहीं कहा जाना चाहिए। मार्क्स का विचार बहुत कुछ उद्विकासीय इसलिए लगता है कि उन्होंने आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन की विचारधारा को एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की।

जिटलिन (I. Zeitlin, 1981: 360) ने बताया है कि सही मायने में समाज के इतिहास के विकास का कोई कठोर नियम (Iron Law) नहीं है। मार्क्स ने यह कभी नहीं कहा कि दुनिया के हर समाज को आवश्यक रूप से इन्हीं चार चरणों से गुजरना ही होगा। जिटलिन के अनुसार मार्क्स के विचारों की तुलना स्पेंसर एवं मॉर्गन से नहीं की जानी चाहिए। लेकिन यह विचार सही मायने में एक विवाद का विषय बना हुआ है।

हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer, 1820-1903)

स्पेन्सर (1910; 1914) ने जीव एवं समाज के बीच समानता के आधार पर समाज के उद्विकासीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार पदार्थ अविनाशी एवं गतिमान होता है। गत्यात्मकता ही उद्विकास के मूल में है। समाज ब्रह्माण्ड (Universe) की गत्यात्मकता के कारण ही सदा परिवर्तनशील है। प्रारंभ में समाज बहुत ही सरल था। परिवर्तन की प्रवृत्ति के कारण ही विभेदीकरण भी बढ़ता गया। मुख्यतः उद्विकास में दो प्रक्रियाएँ काम करती हैं। एक विखंडन (Division) की और दूसरी एकीकरण (Integration) की। इकाइयों (Units) के आकार में विस्तार के साथ-ही-साथ उसकी संरचना (Structure) में भी वृद्धि होती है। मूलतः स्पेन्सर के विकास की प्रक्रिया को एकीकरण की ही प्रक्रिया मानते हैं। कहने का मतलब समाज की व्यापक एकता जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे समाज के अंग-प्रत्यंग की जटिलता एवं कार्य बढ़ते जाते हैं।

उद्विकास की प्रक्रिया में समाज के विभिन्न अंग जैसे-जैसे विकसित होते जाते हैं, वैसे-वैसे उनके विभिन्न अंगों के बीच श्रम विभाजन और विशेषीकरण (Division of Labour and Specialization) भी बढ़ते जाते हैं। उदाहरण के लिए हम परिवार, स्कूल,

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

राज्य आदि समितियों के विशेषीकृत प्रकार्यों की चर्चा कर सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि समाज के विभिन्न अंगों के बीच श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण की प्रक्रिया बढ़ने से उसमें पृथकता बढ़ जाती है। बल्कि, उनके बीच अन्त:निर्भरता (Interdependence) बढ़ती है। उदाहरण के तौर पर हम कह सकते हैं कि राज्य एवं अन्य समितियों तथा संस्थाओं के बीच अन्त:सम्बन्ध एवं अन्त:निर्भरता बढ़ी है।

सामाजिक उद्‌विकास की प्रक्रिया कुछ निश्चित स्तरों (Stages) से होकर गुजरती है। इसी प्रक्रिया के दौरान समाज का सरल स्वरूप जटिलता को प्राप्त कर लेता है। स्पेन्सर के अनुसार आधुनिक समाज तीन चरणों से गुजरा है, वे हैं– (1) आदिम (Primitive), (2) बर्बर (Savage) और (3) औद्योगिक (Industrial)।

संक्षेप में हेम कह सकते हैं कि स्पेन्सर ने रेखीय उद्‌विकास की चर्चा की है, लेकिन बाद में उसने बहुरेखीय उद्‌विकास को भी स्वीकार किया। सामाजिक इकाइयों के बीच श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण बढ़ने के साथ ही अन्त:निर्भरता भी बढ़ती है। डर्कहाइम (Emile Durkheim) के द्वारा प्रतिपादित श्रम विभाजन (Division of Labour) का सिद्धान्त स्पेन्सर की उद्‌विकासीय व्याख्या से प्रभावित हुआ मालूम पड़ता है।

ई० बी० टायलर (E. B. Tylor 1832-1917)

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

म जान का प्राक्रया स काफी मिलता है (Sorokin, 1978: 359-70)।

एमिल डर्कहाइम (Emile Durkheim, 1858-1917)[4]

डर्कहाइम (1947) ने भी श्रम विभाजन के सिद्धान्त (Division of Labour) में सामाजिक परिवर्तन को उद्विकासीय परम्परा में स्पष्ट किया। उनके अनुसार समाज का परिवर्तन यांत्रिक या सहज एकता (Mechanical Solidarity) से सावयवी एकता (Organic Solidarity) की ओर होता है। सहज एकता प्राचीन एवं सरल समाजों की विशेषता है। ऐसे समाज में व्यक्तियों की स्थिति (Statuse), भूमिका (Role), मूल्य (Value), विश्वास (Belief), जीवन शैली, नैतिकता (Morality) आदि में एकरूपता पायी जाती है। व्यक्तियों पर परम्परा (Tradition), जनमत (Public Opinion) और धर्म (Religion) का अत्यधिक प्रभाव होता है। कानून का स्वरूप दमनकारी (Repressive) होता है। अपराध को सामूहिक भावनाओं पर आघात माना जाता है।

दूसरी ओर डर्कहाइम ने सावयवी एकता (Organic Solidarity) को समाज

4. इनके नाम का सही उच्चारण एमिल डर्कहाइम है। बहुत पुस्तकों में इमाइल 'दुर्खीम' या दुर्खाईम' लिखा हुआ है, जो निश्चित रूप से गलत है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वैसे समाज को कहा है जो विकसित (Developed), जटिल (Complex), उद्योगीकृत (Industrialized) और आधुनिक (Modern) है। समाज में ऐसा परिवर्तन श्रम विभाजन (Division of Labour) एवं विशेषीकरण (Specialization) में विस्तार के कारण होता है। इससे व्यक्ति एक-दूसरे से स्वतंत्र न होकर अश्रित हो जाता है। कानून का स्वरूप दमनकारी (Repressive) न होकर वह क्षतिपूर्ति (Restitutive) के सिद्धान्त पर आधृत हो जाता है। अर्थात् गलत काम करने वाले लोगों को कानूनी तौर पर घाटे की भरपाई करनी होती है।

यांत्रिक एकता का आधार सामूहिकता की भावना है, तो सावयवी एकता का आधार वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं भिन्नता है। यांत्रिक एकता व्यक्ति और समाज के बीच प्रत्यक्ष एवं सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है, जबकि सावयवी एकता समाज में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करती है।

संक्षेप में डर्कहाइम ने सामाजिक उद्विकास का सम्बन्ध श्रम विभाजन एवं सामाजिक एकता से बताया है। समाज आरंभिक दौर में यांत्रिक एकता पर निर्भर था और उसमें श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण का अभाव था। दमनकारी कानून का बोलबाला था। सामूहिक चेतना (Collective Consciousness) की प्रधानता थी। समय बीतने के साथ समाज में जनसंख्या एवं उसकी आवश्यकताओं में वृद्धि हुई। इससे श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण की प्रक्रिया का विस्तार हुआ। वैयक्तिक भिन्नताएँ बढ़ने लगीं। सामूहिकता में ह्रास होने लगा। ऐसे समाज में सावयवी एकता का विस्तार हुआ और सामाजिक संरचना जटिल हो गयी।

बेन्जमीन किड (Benjamin Kidd, 1858-1916)

किड ने अपनी पुस्तक **Social Evolution** में बताया है कि समाज के उद्विकास के

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner